स्वास्थ्य समाचार पत्रिका

(मासिक)

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

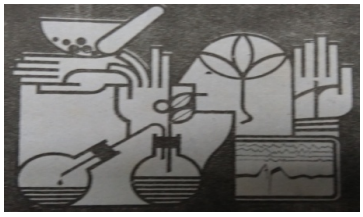

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च।।

प्रकाशक
आयुर्वेद संकाय,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पिन – 221005

अंक–3 सितम्बर–2017

संरक्षक

प्रो0 विजय कुमार शुक्ल
निदेशक,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रधान सम्पादक

प्रो0 यामिनी भूषण त्रिपाठी
संकाय प्रमुख,
आयुर्वेद संकाय

सम्पादक

प्रो0 हरि हृदय अवस्थी

सह–सम्पादक मण्डल

डॉ0 अभिनव
डॉ0 अनुराग पाण्डेय
डॉ0 कंचन चौधरी
डॉ0 संजीव कुमार
डॉ0 वैभव जायसवाल

सम्पादक सचिव

डॉ0 रामजीत विश्वकर्मा
श्रीमती चन्दा श्रीवास्तव

सम्पादकीय

प्रिय पाठकों,

सादर नमस्कार

आपको यह जानकर परम हर्ष होगा कि हमारे कर्मठ संकाय प्रमुख, प्रो0 यामिनी भूषण त्रिपाठी जी की दूरदर्शिता, कुशल नेतृत्व एवं सद्प्रयासों से ''स्वास्थ्य समाचार पत्रिका (मासिक) के अंक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वेब पेज पर निम्न लिंक पर http://www.bhu.ac.in/research_pub/swaasthya-patrika/ उपलब्ध हैं उसको वहां से डाउनलोड किया जा सकता है। इससे आयुर्वेद में रूचि रखने वाले देश – विदेश के पाठकों में आयुर्वेद का प्रचार एवं प्रसार होगा और आयुर्वेद के सिद्धान्तों का अनुसरण कर पाठक अपने को अधिक स्वस्थ एवं ऊर्जावान रख सकेंगें। आगे के अंक भी वेब पेज पर उपलब्ध होंगें।

जैसे इस जगत में सूर्य देव ही ऊर्जा एवं अग्नि के स्रोत हैं, उन्हीं पर वनस्पति जगत एवं प्राणी जगत का जीवन निर्भर करता है। उसी प्रकार मानव शरीर में भी अग्नि देव प्रमुख रूप से जठराग्नि के रूप में रहते हुये पाचन किया एवं उसके द्वारा आहार से प्राप्त ऊर्जा से शरीर का संचालन करते हैं। इसी को ध्यान में रखकर यह अंक–3 सितम्बर 2017 एवं अगला अंक ''पाचन तंत्र एवं अग्नि'' पर आधारित है। मैं सभी विद्वान लेखकों का आभारी हूँ, जिन्होंने जनमानस हेतु दुरूह विषय को सरल एवं ग्राह्य भाषा में लिखा है।

जय आयुर्वेद, जय हिन्द!

प्रो0 हरि हृदय अवस्थी

आंत में जीवाणुओं की सार्थकता

प्रो0 यामिनी भूषण त्रिपाठी,संकाय प्रमुख आयुर्वेद

आंत में ब्युटरेट बनाने वाले जीवाणुओं का होना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। इनकी सामान्य अवस्था में क्रियाशीलता के कारण आंत में आक्सीजन की खपत, ऊर्जा उत्पन्न करने वाली बीटा–आक्सीडेसन नामक प्रक्रिया में खर्च होती है तथा आंत में रोग उत्पन्न करने वाले एरोबिक जीवाणुओं जैसे ई0 कोलाई, सालमोनेला इत्यादि को नहीं पनपने देती है। परन्तु जब ब्युटरेट बनाने वाले जीवाणुओं की संख्या घट जाती है जैसे कि एन्टीबायोटिक दवाओं के इस्तेमाल से तब नाइट्रेट की मात्रा आंत की कोशिकाओं में अधिक बनने लगता है जिससे सूजन उत्पन्न होता है तथा आंत की अन्य क्रियाओं जैसे पाचक द्रव्यों का कम बनना, खाद्य पदार्थों को अवशोषण करने की क्षमता इत्यादि कम हो जाती है। इस परिस्थिति में ई0 कोलाई नामक जीवाणुओं की दीवार में पाये जाने वाले एल पी एस नामक द्रव्य का अधिक बनना तथा उनको आंत में अवशोषित होकर रक्त में पहुंचना अधिक हानिकारक होती है। ये पूरे रक्त नलिका में प्रवाह करते हुये इनकी कोशिकाओं अन्तः स्तर कोशिका में सूजन उत्पन्न करता है। जिससे रक्त का बहाव अवरूद्ध होने लगता है साथ ही एल पी एस, लीवर में पहुंच कर उसके कार्य क्षमता को भी घटा देता है। फैटी लिवर भी इसी कारण होता है।

अतः आंत को सुचारू रूप से कार्य करते रहने हेतु उसमें आवास करने वाले स्वास्थ्यवर्धक जीवाणुओं को स्वस्थ रखना एवं उनको प्रचुर मात्रा में जीवित बनाये रखना अति आवश्यक है। इसके लिये उपयुक्त भोजन, औषधियां, सफाई एवं रखरखाव अति आवश्यक है। आयुर्वेद में उपयुक्त भोजन के साथ–साथ उनको ग्रहण करने की विधि, समयान्तर एवं औषधियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। सफाई के लिये पंचकर्म चिकित्सा का विशेष उल्लेख किया गया है। तक्र का भी महत्व बताया गया है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में पूर्व जैविक एवं समर्थक जैविक दवाओं का वर्णन किया गया है। प्री–बायोटिक वो खाद्य पदार्थ है जो स्वंय नहीं पचाये जा सकते हैं, परन्तु आंत में रहने वाले जीवाणुओं को विकसित होने में मदद करते हैं इसके उदाहरण फाइबरस है इसके विपरीत प्रो–बायोटिक द्रव्य स्वंय जीवाणुओं का मिश्रण होता है। दही इसका सबसे अच्छा स्रोत है।

चिकोरी की जड़, शलजल, कन्ना/शकरकन्द, इसबगोल, लहसुन, प्याज, आटा, केला इसके अच्छे उदाहरण है। प्री–बायोटिक, आंत की कोशिकाओं को स्वस्थ रखती है। अवशोषण की क्षमता बढ़ाती है। एन्जाइमस का स्राव बढ़ाती है। जीवाणुओं की स्रजनन क्षमता तथा उनकी संख्या बढ़ाती है।

आंत में पाये जाने वाले जीवाणु शरीर के प्रतिरक्षा प्रणाली को भी ठीक रखती है। इनसे निकलने वाले शार्ट चेन फैटी एसिड एवं ब्युटरेट नामक पदार्थ आंत की कोशिकाओं के लिये बहुत फायदेमन्द है। ये आंत की कोशिकाओं के जी–प्रोटीन रिसेप्शन्स से मिलाकर इनकी रासायनिक क्रियाओं को प्रमाणित करती है। इन जीवाणुओं की कमी से आंत में बनने वाले रोग विरोधी क्षमता वाली कोशिकाओं जिन्हे प्रतिरक्षा कोशिकायें कहते हैं उनकी कार्य क्षमता कम हो जाती है। कई बार इन कोशिकाओं की गड़बड़ी से आटो इम्यून रोग उत्पन्न होते हैं। गठिया एवं सफेद दाग इनके प्रमुख है। आयुर्वेद में इसे आमदोष के नाम से जानते हैं। आयुर्वेद के सिद्धान्त से अग्नि मन्द होने से आमदोष होता है तथा आंत जठराग्नि का स्थान माना जाता है।

इन जीवाणुओं की खराबी से आंत में उत्पन्न होने वाले हारमोन भी असामान्य हो जाते है। जिससे आंत की संकुचन शक्ति एवं क्रियाशीलता प्रभावित होती है। जी0एल0पी0–1 नामक हारमोन की कमी से मधुमेह उत्पन्न होने का अन्देशा बढ़ जाता है। ग्रेलीन नामक हारमोन की कमी से भूख प्रभावित होती है।

अतः हर हाल में आंत को स्वस्थ रखने का प्रयास करना चाहिये इसके लिये भोजन, मानसिक सोच एवं दिनचर्या का पालन अति आवश्यक है।

समाग्नि, विषमाग्नि एवं अध्यशन का अग्नि एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव

डा0 सुदामा सिह यादव सह आचार्य संहिता एवं संस्कृत विभाग

संहिता ग्रन्थों में अग्नि एवं स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारको का विकसित एवं विस्तार से वर्णन मिलता है। अग्नि को प्रभावित करने वाले कारकों में आहार की मात्रा, आहार के विविध गुणो के साथ आहार विधि का भी महत्वपूर्ण स्थान है। समशन, विषमाशन एवं अध्यशन का अग्नि एवं शरीर पर प्रभाव का विस्तार से वर्णन किया गया है। ये तीनों प्रकार के आहार मृत्यु अथवा भयंकर व्याधियों के उत्पादक होते है।

समशनः पथ्य एवं अपथ्य आहार को एक साथ मिलाकर सेवन करना समशन कहलाता है । समशन का उदाहरण है रक्तशाली एवं यवक को मिलाकर सेवन करना। अग्नि की रक्षा के लिए पथ्य एवं अपथ्य आहार को एक साथ मिलाकर सेवन नहीं करना।

विषमाशनः मात्रा से अधिक भोजन करना, अथवा अल्प मात्रा में भोजन करना, भोजन काल से पूर्व भोजन करना अथवा भोजन काल के व्यतीत हो जाने पर भोजन करना, विषमाशन कहलाता है। मात्रा से अधिक भोजन सभी दोषो को प्रकुपित करता है। अल्प मात्रा में भोजन करने से बल एवं ओज का क्षय होता है एवं सभी प्रकार के वात रोग उत्पन्न हो जाते है। समय पर भोजन करना आरोग्यता का कारण है।

अध्यशनः पूर्व किये गये आहार के उचित पाक न होने पर भी पुनः भोजन करना अध्यशन कहलाता है।

समशन, विषमाशन एवं अध्यशन ये तीनो प्रकार के आहार मृत्यु अथवा भयंकर व्याधियों के उत्पादक होते है अतः पथ्य एवं अपथ्य आहार को एक साथ मिलाकर सेवन नहीं करना चाहिए। मात्रा से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए , अथवा अल्प मात्रा में भोजन नहीं करना चाहिए , भोजन काल से पूर्व भोजन नहीं करना चाहिए अथवा भोजन काल के व्यतीत हो जाने पर भोजन नहीं करना चाहिए, पूर्व किये गये आहार के उचित पाक न होने पर भी पुनः भोजन करने से जठराग्नि विकृत होकर स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

अपने अग्निबल को कैसे जानें ?

अपर्णा सिंह, शुचि त्रिपाठी, प्रो0 किशोर पटवर्धन, प्रो0 संगीता गहलौत, क्रिया भारीर विभाग

वर्तमान भौतिक युग में मनुष्य की त्वरित गति से संचरित जीवनशैली में मनुष्य द्वारा उनकी विषम खाद्य आदतो, व्यस्त दिनचर्या, अनावश्यक तनाव तथा भौतिक संसाधनो को प्राप्त करने की अतीव उत्कटता आदि कारण मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है जिनका प्रभाव आहार के असम्यक पाचन पर भी होता है।

देह को जीवित रखने के लिये जिस प्रकार प्राण वायु का महत्व है, उसी प्रकार देह का निर्माण करने, क्षीण होने से रोकने तथा संवर्धन करने में अन्नपान का विशेष महत्व है। इस आहार का पाचन अग्नि द्वारा होता है जिसे आहार रस का निर्माण होता है जो शरीर को बल प्रदान करता है।

जिस प्रकार आहार को अग्नि की अपेक्षा रहती है उसी प्रकार अग्नि की विद्यमानता के लिये दैनिक आहार एवं अग्नि की सत्ता आवश्यक है और अग्नि की स्थिति आहार पर निर्भर करती है।

शरीर में आहार का पाक सर्वप्रथम पाचकाग्नि के द्वारा होता है जो आहार का पाक करती हुई उसे आहार रस में परिवर्तित करती है फिर भूताग्नि के रूप में अग्नि गुणान्तर उत्पन्न करके देह पोषक रस का रूप प्रदान करती है, तदानन्तर धातवग्नि के रूप में अग्नि देह की धातुओं का निर्माण एवं जीव कोशिकाओं में आहार द्रव्यों के विघटन करने का कार्य भी करती है। आचार्यों ने शरीर में चार प्रकार के अग्नि बल बताये हैं – समाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि एवं मन्दाग्नि। आयुर्वेद के विभिन्न संहिता ग्रन्थों में अग्नि का निर्धारण इन चार प्रकार की अग्नि के

लक्षणों द्वारा बताया गया है, इसी को आधार मानकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद संकाय के अन्तर्गत क्रिया शारीर विभाग में अग्निबल के परिक्षण के लिये शोध कार्य किया गया। इस शोध कार्य के लिये शरीर में अग्निबल निर्धारण हेतु एक अग्निबल परीक्षण प्रोफार्मा का निर्माण किया गया। इस कार्य हेतु विश्वविद्यालय में अध्ययनरत 300 छात्र–छात्रायें जिनकी आयु 18 से 40 वर्ष के मध्य थी उन्हें शोध कार्य में लिया गया।

आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित समाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि एवं मन्दाग्नि के लक्षणों को एकत्र कर एक प्रश्नावली बनायी गयी तथा इस प्रश्नावली की विश्वसनीयता एवं वैधता के लिये परीक्षण किया गया। इस प्रकार एक वैध एवं विश्वसनीय प्रश्नावली का निर्माण किया गया।

इस प्रश्नावली का निर्माण का उद्देश्य स्व–अग्निबल निर्धारण करना है। इस अध्ययन में प्रयुक्त हुए मापदंडों में कुछ महत्वपूर्ण विभिन्नताएं जैसे–मन्दाग्नि और तीक्ष्णाग्नि वर्ग में कुल कोलेस्ट्राल एवं विषमाग्नि और समाग्नि वर्ग में एल.डी.एल., एच.डी.एल, औसत (मीन) कोलेस्ट्राल अनुपात। यह साधन व्यक्तियों में जैवरसायनिक मूल्यांकन के लिए उपयोगी हो सकता है।

इस प्रश्नावली के द्वारा व्यक्ति के अग्निबल का निर्धारण एवं उसके आधार पर आहार विहार का निर्देश एवं औषधि की व्यवस्थापत्र का निर्धारण किया जा सकता है जिससे अग्नि अपनी साम्यावस्था में रहते हुए मनुष्य को आरोग्य युक्त रखे।

अग्नि का निर्धारण होने के साथ–साथ व्यक्तियों को अग्नि के अनुसार किस प्रकार के औषध, आहार एवं विहार का सेवन करना चाहिये – इस की योजना भी बनाई जा सकती है जिससे मन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि एवं विषमाग्नि के मनुष्य समाग्नि पर लौट सकें, जो एक आदर्श अवस्था है।

इस प्रश्नावली में निम्न सूत्र के द्वारा प्रतिशत अग्निबल का निर्धारण किया जा सकता है –

प्रतिशत अग्निबल – प्रत्येक अग्निबल के प्राप्तांक / प्रत्येक अग्निबल के मूलांक

प्रश्न	मन्दाग्नि	विषमाग्नि	समाग्नि	तीक्ष्णाग्नि
इनमें से कौन सा विकल्प आपकी पाचन शक्ति के अनुरूप है?	मैं अल्प मात्रा में भी भोजन पचाने में असमर्थ हूँ।	मेरी पाचन शक्ति एक समान नहीं रहती। कभी भोजन पच जाता है, कभी नहीं।	उचित मात्रा में ग्रहण किये गये सभी भोज्य पदार्थ मैं पचा सकता /सकती हूँ।	मैं सभी भोज्य पदार्थों को अधिक मात्रा में लेने पर भी पचा सकता /सकती हूँ।
आहार ग्रहण करने के कितनी देर बाद आपको पुनः खाने की इच्छा होती है।	मुझे आहार लेने के आठ घण्टे बाद पुनः खाने की इच्छा होती है।	मेरा भोजन लेने का समय एवं अन्तराल एक समान नहीं रहता है।	मुझे आहार लेने के छः से आठ घंटे के बाद पुनः खाने की इच्छा होती है।	मुझे आहार लेने के बाद छः घण्टे के भीतर ही पुनः खाने की इच्छा होती है।
दिनचर्या बिगड़ने पर आपको अपनी पाचन शक्ति किस प्रकार प्रभावित लगती है।	दिनचर्या में न्यूनतम परिवर्तन होने पर सम्यक पाचन नहीं होता है।	दिनचर्या में बड़ा परिवर्तन होने पर सम्यक पाचन नहीं होता है।	दिनचर्या असामन्य होने पर भी पाचन क्रिया पर उसका प्रभाव नहीं होता है।	प्रारम्भिक बदलाव की स्थिति में पाचन क्रिया असामान्य होती है, परन्तु बाद में अनुकूल बन जाती है।

पूरे दिन में आप कितनी बार भोजन ग्रहण करते हैं।	मैं दो बार से भी कम भोजन लेता / लेती हूँ।	मैं दिन में 1 से 4 बार भोजन ग्रहण करता/करती हूँ।	सामान्यतः मैं पूरे दिन में 2 से 4 बार आहार ग्रहण करता/करती हूँ।	मैं तीन से अधिक बार आहार ग्रहण करता/करती हूँ।
आपकी भूख सहने की क्षमता कैसी है अर्थात् आप कितनी देर तक भोजन की प्रतीक्षा कर सकते हैं।	मैं 2 घण्टे से अधिक भूख सहन नहीं कर सकता /सकती हूँ।	मैं कभी 1 घण्टे या कभी उससे भी कम समय तक भूख सह सकता/ सकती हूँ।	मैं 1 से 2 घण्टे तक भूख सह सकता/ सकती हूँ।	मैं भूख बिल्कुल भी नहीं सह सकता/सकती हूँ।
आप कितनी मात्रा में भोजन लेते हैं।	मैं अल्प मात्रा में भोजन लेता/लेती हूँ।	मैं कभी अधिक कभी अल्प मात्रा में भोजन लेता / लेती हूँ।	मैं सामान्य मात्रा में भोजन लेता /लेती हूँ।	मैं अधिक मात्रा में भोजन लेता/लेती हूँ।
आपकी गरिष्ठ आहार पचाने की क्षमता समय के संदर्भ में कैसी है।	भोजन पचने में सामान्य से अधिक समय लगता है।	भोजन पचने में कभी कम कभी अधिक समय लगता है।	भोजन उचित समय में पच जाता है।	भोजन जल्दी पच जाता है।
आपकी आंतों की स्थिति कैसी रहती है।	आप कब्ज से ग्रसित रहते हैं।	मल कभी ठोस, कभी सामान्य से पतला रहता है।	मल सामान्य रहता है।	..
आपकी भोजन सम्बन्धी आदतें कैसी है।	मैं अक्सर देर से भोजन लेता/लेती हूँ।	मैं कभी समय से पहले कभी बाद में भोजन लेता हूँ।	मै निश्चित समय पर भोजन लेता हूँ।	मैं समय से पहले ही भोजन लेता हूँ।
भोजन पूरी तरह पच जाने पर आप कैसा महसूस करते हैं।	पेट में भारीपन महसूस होता है।	कभी – कभी पेट में हल्का भारीपन महसूस होता है।	पेट तथा शरीर के अन्य भागों में हल्कापन महसूस होता है।	भोजन लेने के कुछ ही देर बाद मुझे पेट में हल्कापन महसूस होता है।
अपनी पसंद का भोजन देखने पर आप कैसा महसूस करते हैं।	मुझे भोजन लेने की इच्छा बिल्कुल नहीं होती है।	मुझे कभी भोजन लेने की इच्छा होती है, कभी नहीं होती है।	मैं भोजन ग्रहण करना चाहूंगा।	मैं कोई भी भोज्य पदार्थ लेना चाहूंगा। चाहे वह मेरी पसंद का हो या न हो।

रोगोत्पादन में अग्नि की भूमिका एक चिकित्सकीय पक्ष

डा0 अजय पाण्डेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, कायचिकित्सा विभाग

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अग्नि को समस्त चयापचय व्यापार का प्रमुख कारक माना गया है। इस संबंध में ''रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ'' – वाग्भट का कथन अति महत्वपूर्ण है। तथा अग्नि की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति पर ही समस्त प्राणी समूह का जीवन मरण अवलम्बित है। शरीर

में अग्नि के माध्यम से ही अन्न द्वारा शरीर एवं मन का पोषण होता है। तथा शरीर में ओज एवं बल की प्राप्ति होती है। शरीर के सम्पूर्ण आग्नि व्यापार तेरह प्रकार की अग्नियों पर आधारित है। इन सभी अग्नियों में उदर में रहने वाली जठराग्नि सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह अन्य सभी प्रकार की अग्नियों का पोषण एवं नियंत्रण रखती है।

आज के बदलते परिवेश में मनुष्य की जीवन शैली अस्त–व्यस्त हो गयी है। खानपान की आदतें पालनीय नियम सभी मनुष्य से दूर हो गये हैं। जिसका सीधा प्रभाव उसके पाचन तंत्र में स्थित अग्नि पर पड़ता है। परिणामस्वरूप मन्दाग्नि की अवस्था उत्पन्न होती है। यह मन्दाग्नि समस्त रोगों का मूल कारक माना गया है। विशेषकर उदर रोगों का आयुर्वेद में बताया गया है कि अग्नि के मंद होने से अजीर्ण एवं अजीर्ण से आम की उत्पत्ति होती है। तथा आम से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। इस आम की रोग कारणता के कारण ही इसे त्रिदोष (वात–पित्त–कफ) के समकक्ष स्थापित करने की कल्पना की गयी है।

यह आम वस्तुतः एक द्रव्य विशेष भी है। और एक अवस्था विशेष भी जो भिन्न–भिन्न अग्नियों के स्तर पर उत्पन्न होता है। यह द्रव्य विशेष कहने का तात्पर्य है कि अग्नियों के मन्दाग्नि के कारण आहार तथा धातु एवं भूत स्तर पर चयापचय के दौरान अनेक प्रकार के विजातीय द्रव्यों का निर्माण होता है। जिसकी उपस्थिति से शरीर में स्थानीय एवं संस्थानिक स्तर पर दुष्प्रभाव पड़ता है। जो कालान्तर में रोग का कारण होता है। जिसमें मुख्य रूप से जैविक अनूर्जता स्वरोगक्षम विकार तथा स्रोतों रोधक विकार मुख्य है। शरीर में स्थिति सभी प्रकार के आम वर्गीय द्रव्य जैविक संक्षोभ तथा दूसी विष का काम करते हैं।

आयुर्वेद मनीषी ने इसी अग्नि एवं आम की रोग कारणता को देखते हुए तीन प्रकार के चिकित्सा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यथा

1. लंघन – अल्प भोजन, उपवास आदि के अग्नि का जीवन एवं आम का पाचन करना।
2. लंघन पाचन – शरीर में जब आम का बल मध्यम हो तो उपरोक्त के साथ पाचन औषधियों जैसे – चित्रक, इन्द्रयव, मुस्तक, पर्पटक, हिंगू आदि एकल द्रव्य चित्रकादि वटी, पाचन चूर्ण, शिवाक्षार चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण, पिपल्यासव आदि औषधियों का प्रयोग कर रोगोत्पादक कारण का विनाश करना चाहिए।
3. दोषावसेचन – शरीर में आम की अवस्था जब प्रबल हो तो उसे संशोधन (वमन, विरेचन, आस्थापन, रक्त मोक्षण तथा सिरोविरेचन) के द्वारा बाहर निकालना चाहिए तथा अग्नि की सम्यक स्थिति को बनाये रखना चाहिए।

इस प्रकार आयुर्वेद में अग्नि रोगोत्पादन में प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। इसकी यथा स्थिति को बनाये रखने के लिए मनुष्य को हितकर आहार एवं विहार का पालन करना तथा मानस भावों को नियंत्रित करने के लिए आचार रसायन एवं सद्वृत्त पालन करना चाहिए।

भोजन समय एवं अन्तराल

***डा0. दिव्या गुप्ता **डा0. सर्वेश कुमार अग्रवाल ***डा0.कमलेश कुमार शर्मा**
***पी.जी. अध्येत्री, **असिस्टेंट प्रोफेसर, ***प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष**
राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान जयपुर

आधुनिक युग में भोजनोपयोग के नियमों के विषय में जागरुक होने की अत्यावश्यकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि बहुत से ऐसे रोग आजकल मुख्य रुप से केवल इन्हीं कारणों से उत्पन्न व विकसित हो रहे हैं जैसे–गैस बनना, कब्ज होना, डकारें आना, अम्लपित्त (एसिडिटी), आमाशयगत व्रण (अल्सर), ग्रहणी रोग, शिरः शूल इत्यादि।

इनसे पीड़ित मनुष्यों की संख्या यह परिलक्षित करती है कि भोजन काल व अन्तराल के विषय में कितनी जागरुकता आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य कितनी मात्रा में आहार सेवन करे, इसका निर्धारण उसकी अग्नि का बल करता है। जितनी क्षुधा हो व्यक्ति को उससे थोड़ा कम ही खाना चाहिए; ताकि आमाशय का कुछ भाग वायु आदि दोषों के संचरण के लिए रिक्त रह

सके। अकाल/अतीत काल भोजन नहीं करना चाहिए अर्थात् भूख लगे बिना भोजन अथवा भूख लगने पर भी भोजन न करना– ये दोनों ही व्याधि के कारण हैं। सम्यक् काल में ही अग्नि का संधुक्षण होता है तथा अन्नवह संस्थान में भोजन पाचक स्रावों की उत्पत्ति व प्रवृत्ति होती है। अतः यदि सम्यक् काल से पहले भोजन किया जाए तो अग्नि अथवा इन स्रावों के अभाव में भोजन पूर्ण रुपेण पाक को प्राप्त नहीं होता अर्थात् आम रस की उत्पत्ति होती है एवं यदि काल उत्पन्न होने पर भोजन न किया जाए तो ये स्रावादि आहार नलिका की झिल्ली को क्षति पहुँचा सकते हैं। अतीत काल अर्थात् भोजन काल बीत जाने पर भी ये स्राव प्रवृत्त नहीं होते अतः भोजन का उचित पाक नहीं हो पाता है।

इसी प्रकार 'अध्यशन' अर्थात् एक भोजन का पाक हुए बिना फिर से भोजन करना–यह भी निषिद्ध है। इससे पूर्व में किया हआ तथा दोबारा किया हुआ, दोनों आहार विदग्ध हो जाते है तथा भोजन का उचित पाक न होकर 'आम' की उत्पत्ति होती है जो कि आजकल हो रहे विभिन्न ऑटो इम्यून डिस्ऑर्डर्स का एक कारण है।

पूर्व भोजन का उचित पाक हो गया है यह जानने के कुछ लक्षण हैं, जैसे–शुद्ध उदगार (डकार) होना, मूत्र पुरीषादि वेगों से निवृत्त होना, शरीर में हलकापन, भूख का लगना, प्यास लगना, शरीर में उत्साह/ऊर्जा होना। इस प्रकार इन लक्षणों के उत्पन्न होने पर ही पुनः भोजन करना चाहिए।

द्विकाल भोजन करने वाले व्यक्ति को प्रातः काल शौच स्नानादि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर सूर्योदय के सवा प्रहर अर्थात् 3 घंटे 45 मिनट बाद दिन का पहला भोजन करना चाहिए। यह समय प्रातः लगभग 9:15 – 10:15 बजे के मध्य होता है। दिन का द्वितीय भोजन सूर्योदय के साढ़े चार प्रहर अर्थात् साढ़े तेरह घंटे पश्चात् करना चाहिए। यह समय सांय लगभग 6:45–7:45 बजे के मध्य होता है। इस प्रकार दोनों भोजन के मध्य में लगभग 3 याम (9 घण्टे) का अन्तराल अपेक्षित है। द्वितीय भोजन से पूर्व आहार के पाक के लक्षणों का भी विचार करना चाहिए।

एक काल भोजन करने वाले व्यक्तियों को शीत ऋतु (हेमन्त व शिशिर) में रात्रि लंबी होने के कारण प्रातः काल भोजन करना चाहिए। एवं ग्रीष्म/वर्षा ऋतु में दिन लंबे होने से सांय काल भोजन करना चाहिए। इसी प्रकार दिन व रात्रि बराबर होने पर मध्याह्न काल में भोजन ग्रहण करना चाहिए।

निष्कर्ष

- अग्नि सर्वोपारि है। सभी आहार–विधि विधानों का पालन मनुष्य अपनी अग्निबल के अनुसार करे।
- शरीर की बायोलोजिकल क्लॉक या सरकेडियन रिद्म के अनुसार ही इसमें विभिन्न स्राव/एन्जाइम/हॉर्मोन्स उत्पन्न होते हैं। अतः समय पर आहार ग्रहण करना उचित पाक के लिए आवश्यक है।
- पूर्व भोजन का पाक हुए बिना पुनः भोजन आमोत्पत्ति करता है, इससें बचना चाहिए।
- सामान्य व्यक्ति को दो बार भोजन करना चाहिए। सबुह का भोजन लगभग 9:15 से 10:15 बजे के मध्य तथा सांय काल का भोजन लगभग 6:45 से 7:45 बजे के मध्य करना चाहिए।
- दो भोजनों के मध्य यदि आवश्यकता हो तो जल, फल, ज्यूस सलाद आदि ले सकते हैं।

बच्चों में भूख ना लगना एक जटिल समस्याः कारण एवं समाधान

डा. अम्बर साहू, जे.आर.द्वितीय एवं डा. पी.एस. उपाध्याय, असिस्टेंट प्रोफेसर

वर्तमान समय में बच्चों में भूख ना लगना एक सामान्य समस्या है जिसके कारण शिशुओं के स्वास्थ्य शारीरिक एवं मानसिक विकास पे दूरगामी प्रभाव पड़ता है इसके कई

कारण होते हैं जैसे कि बच्चे का संक्रामक बिमारियों जैसे आंत्रिक ज्वर, संक्रामक हिपेटाइटिस खसरा आदि से पीड़ित होना इन रोगों के अतिरिक्त कृमि रोगों से पीड़ित होना।

कई गंभीर बिमारियाँ जैसे जन्मजात हृदय रोग खून की कमी के कारण भी बच्चों में भूख का अभाव होता है। परन्तु आधुनिक समय की जो जीवन शैली एवं खान–पान है वह बच्चों की भूख को सबसे ज्यादा प्रभावित करती है, जैसे की जंक फूड का ज्यादा सेवन करना, शारीरिक गतिविधियों में कमी जैसा कि देखा जाता है कि आजकल आउटडोर गेम्स की तुलना में बच्च मोबाइल गेम्स, विडियो गेम्स, में अधिक रूचि रखते है। बड़े बच्चों में तनाव भी एक कारण है जिसके फलस्वरूप भोजन में अरूचि देखने को मिलती है।

आयुर्वेद के दृष्टिकोण से चर्चा किया जाय तो भोजन में अरूचि का कारण अग्नि की विषमता या अग्नि की मन्दता है। गुरू, अभिष्यन्दी, शीत द्रव्य जो अग्नि को मन्द करते है भोजन में अरूचि उत्पन्न करते है जैसे की जंक फूड, कोलड ड्रिंकस आदि अतः बच्चों में इस समस्या से बचाव के लिऐ कुछ सावधानियां रखनी चाहिए जैसे की भोजन ग्रहण करने से पहले हाथ धोने की आदत डालना क्योंकि यह कृमि रोग तथा अन्य संक्रामक व्याधियों का प्रमुख कारण है, स्वच्छ पानी का ही प्रयोग करना चाहिये यदि पानी का उबाल कर प्रयोग करें तो और अच्छा हैं।

जंक फूड, कोलड ड्रिंकस जो आधुनिक युग में बच्चों की आदतों में बहुत ज्यादा घुल–मिल गया है इन सभी से बचने का प्रयास करना चाहिये ये सभी खाद्य पदार्थ अग्नि को मन्द करते हैं। बच्चों की शारीरिक गतिविधियों को बढ़ावा देना चाहिये।

यदि शिशु भोजन में अरूचि से पीड़ित हो तो उसका उचित समाधान यथापूर्व करना चाहिये इसके लिये यदि बालक किसी संक्रामक व्याधि से पीड़ित है तो उसे चिकित्सीय परामर्श से जितना जल्दी हो सके उसका इलाज कराना चाहिये यदि बालक, ज्वर, उल्टी, दस्त से पीड़ित है तो उसे एक गंभीर समस्या के रूप में देखना चाहिये तथा इसका तुरंत इलाज कराना चाहिये तथा भोजन ऐसा ही देना चाहिये जो अग्निवर्धक हो तथा सभी माइक्रो एवं मैक्रो न्यूट्रीयेन्टस से युक्त हो, जैसे हरी सब्जी, दुध, दही, घी, चावल, दाल, रोटी, मौसमी सब्जियाँ एवं फल आदि अग्नि ही बल, वर्ण, आयु, मेधा, ओज सभी का नियामक है, तथा इस रोग से ग्रसित बच्चों में अग्नि का ही विशेष ध्यान रखना चाहिये, अग्नि वर्धक द्रव्यों के सेवन से बच्चा इस रोग से मुक्त हो जाता है।

इस रोग को नजरअंदाज नहीं करना चाहिये क्योंकि यही रोग आगे जाकर कुपोषण का रूप धारण कर लेता है जो कि प्रतिवर्ष हमारे देश में शिशु मृत्युओं का कारण होता है।

ग्रहणी रोग एवं बचाव

डा0 आशुतोष कुमार पाठक, असिस्टेंट प्रोफेसर, रचना शारीर विभाग

वर्तमान समय में मानव जीवन की आहार–विहार परक दोषपूर्ण गतिविधियों ने कई विकारों को जन्म दिया है। पाचनतन्त्र की कई विकृतियां साधारण जन के स्वास्थ्य एवं उसकी गुणवत्ता को निरन्तर प्रभावित कर रही है। वर्तमान आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के महत्वपूर्ण प्रयासों के बाद भी इस दिशा में पूर्ण सफलता नहीं मिल पायी है। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र मानव के आरोग्य को अग्नि के अधीन मानकर चिकित्सा योजना करता है। ग्रहणी मानव शरीर का मुख्य पाचन अंग है। इसका स्थान आमाशय और पक्वाशय के मध्य माना गया है। आयुर्वेद शास्त्र में अन्न पाचन के लिए शरीरस्थ अग्नि को सम्यक अन्नपाचन का उत्तरदायी माना गया है। इस अग्नि का मुख्य स्थान ग्रहणी माना गया है तथा इस अग्नि के दूषण के कई कारणों की गणना आयुर्वेद में की गयी है यथा – बहुत देर तक भूखे रहने से, बार–बार खाने से, अपनी प्रकृति के विरूद्ध भोजन करने से, बासी या दूषित भोजन करने से, किसी चिर रोग से पिड़ित होने से देश, काल, ऋतु के विरूद्ध सेवन करने से, शरीर में मल–मूत्र के वेगों को बहुत देर तक रोकने से, आदि।

इन उपरोक्त कारणों से दूषित अग्नि अन्न का पाचन सम्यक रूप से नहीं कर पाती तथा वह अन्न शुक्तता को प्राप्त होता है तथा विष के समान शरीर को पिड़ा पहुचाता है। जिसके कारण अनेक लक्षण उत्पन्न होते है यथा– सिर दर्द, कमर दर्द, सम्पूर्ण शरीर में भारीपन, अत्यधिक जम्हाई, अत्यधिक प्यास, पेट में जलन, भूख न लगना आदि। अगर इस स्तर पर चिकित्सा न की गई और सम्यक आहार–विहार का पालन नहीं किया गया तो यह रोग उत्तरोत्तर गम्भीर अवस्था को प्राप्त होकर ग्रहणी रोग की उत्पत्ती करता है। जिसमें व्यक्ति अपक्व मल का त्याग करता है। जिसके लक्षण में मुख्य रूप से कभी अत्यन्त बंधा हुआ, कभी अत्यन्त पतला मल का बार–बार त्याग करता है। यह अत्यन्त कष्टकारी होता है तथा व्यक्ति मानसिक रूप से भी व्यथित रहता है। इस ग्रहणी रोग का बाल्यावस्था में साध्य, युवावस्था में कृच्छ्रसाध्य एवं वृद्धावस्था में असाध्य कहा गया है।

इस रोग से बचाव के लिए व्यक्ति को चाहिए कि युक्तिपूर्वक सम्यक आहार–विहार का पालन करे यथा– समय पर भोजन करे, गरम एवं ताजा भोजन सम्यक मात्रा में करें, विरूद्ध आहार अर्थात् ठण्डा–गरम तासिर का भोजन एक साथ न करें, आये हुये मल–मूत्र के वेगों को ज्यादा देर न रोके, सम्यक निद्रा ले, मानसिक विकारों यथा– क्रोध, लालच, व्यर्थ चिन्ता से दूर रहे।

अग्नि दुष्टि के हेतु – डॉ0 पी0 एस0 ब्याडगी, असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ0 पूजा गुप्ता एवं डॉ0 प्रिया सिंह, शोध छात्र

केवल अधिक मात्रा में किया गया भोजन आम दोष को उत्पन्न करता है ऐसी बात नहीं, अपितु गुरू (देर में पचने वाले), रूक्ष (स्नेहरहित), शीत, शुष्क, दुष्ट (जिसके प्रति किसी कारण से दोष हो गया हो), कब्जकारक, विदाही (जलन पैदा करने वाला) अपवित्र तथा विरूद्ध अन्न पानों का असमय में सेवन करना, काम, कोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, लज्जा, शोक अभिमान उद्वेग (घबड़ाना) अथवा भय से दुःखी मन में जो अन्न–पान खाया पिया जाता है, वह भी आमदोष को ही दूषित करता है। (च0 वि0 2/8)

ये प्रकुपित हुए अवकाश अपने स्थान और मार्गों में स्थित धातुओं को प्रकुपित कर देते हैं। और ये सभी धातु भी कुपित होकर स्रोतों को कुपित करते हैं और कुपित जीवन स्रोत दूसरे स्रोतों को कुपित कर देते हैं।

इन सबको दूषित करने वाले दूषित करते हुए वातादि दोष हैं। और ये प्रायः करके (सदा नहीं) अग्नि के दोष से दूषित होते है। (अ0 सा0, शा0 6/51.52)

पाचन तंत्र एवं अग्नि से सम्बंधित रोगों की चिकित्सा में प्रयुक्त रसौषधियां वैद्य विनम्र शर्मा, वरिष्ठ रेसिडेण्ट, रसशास्त्र विभाग

आयुर्वेद में तेरह प्रकार की अग्नियां बतलाई गई हैं, कमशः पांच भूताग्नि, सप्त धात्वाग्नि एवं एक जठराग्नि है। उपरोक्त समस्त प्रकार की अग्नियों में जठराग्नि का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह अन्य अग्नियों का भी संचालन करती है। आयुर्वेदानुसार समस्त रोगों का मूल कारण मन्दाग्नि है, 'रोगा सर्वेऽपि मन्दाग्नौ''। अतः आयुर्वेद में रोग निदान प्रक्रिया में सर्वप्रथम अग्नि बल का सही–सही निर्णय किया जाता है, एवं तदानुरूप उचित द्रव्यों द्वारा चिकित्सा की जाती है। रसद्रव्यों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा सर्वोत्तम चिकित्सा कहलाती है।

अतः अधोलिखित सारिणी द्वारा मन्दाग्नि से होने वाले रोगों में कुछ महत्वपूर्ण औषधियों का प्रयोग दर्शाया गया है'

क0सं0	औषधि का नाम	मात्रा	अनुपान	रोगावस्था
1	हिंग्वाष्टक चूर्ण	3–5 ग्राम	भोजन के प्रथम	अग्निमांद्य, शूल

			कवल एवं घी के साथ	
2	लवण भास्कर चूर्ण	3–5 ग्राम	तक्र, कोष्ण जल	अग्निमांद्य
3	अग्नितुण्डी वटी	1–2 वटी (125 मि.ग्रा.)	निम्बू रस, कोष्ण जल, तक्र	अग्निमांद्य, आमाजीर्ण
4	चित्रकादि वटी	2–4 वटी (500 मि.ग्रा.)	भोजन पूर्व कोष्ण जल, तक्र	आम पाचक, अजीर्ण, अग्निमांद्य, विसूचिका, ग्रहणी
5	शंख वटी	250 मि.ग्रा.	कोष्ण जल	अग्निमांद्य, ग्रहणी, उदरशूल
6	हिंग्वादि वटी	1–2 वटी	कोष्ण जल	अजीर्ण, उदरशूल, अग्निमांद्य
7	लशुनादि वटी	1–2 वटी	कोष्ण जल	विसूचिका, अजीर्ण, अतिसार
8	शंख भस्म	250–500 मि. ग्रा.	निम्बू रस, त्रिफला, क्वाथ	अजीर्ण, अग्निमांद्य, ग्रहणी, अम्लपित्त, परिणाम शूल, यकृत, प्लीहावृद्ध
9	लौह पर्पटी	250 मि. ग्रा.	दुग्ध, तक्र, भृष्ट जीरक चूर्ण	अग्निमांद्य,ग्रहणी, अम्लपित्त, पाण्डू, सूतिका रोग
10	अग्नि कुमार रस	125–250 मि. ग्रा.	कोष्ण जल, तक्र, मधु	अम्लपित्त, अतिसार, ग्रहणी, शूल

- चिकित्सकीय परामर्श से लेवें।

पाचन शक्ति को मजबूत बनाने के पाँच आयुर्वेदिक नुस्खे

श्रीमती चन्दा श्रीवास्तव, मेडिसिनल केमेस्ट्री विभाग

आजकल अधिकांश लोग कब्ज, एसिडिटी, गैस और खराब पाचन जैसी पेट की कई समस्याओं से परेशान नजर आते हैं। उनकी परेशानी का मुख्य कारण आधुनिक लाइफस्टाइल है। जिसके चलते दिनो दिन लोगों का खानपान बिगड़ता जा रहा है।

परन्तु यदि इस आधुनिक लाइफस्टाइल में भी आप अपने खान–पान के तरीकों में थोड़ा सा बदलाव करके पेट की समस्याओं से ना सिर्फ छुटकारा पा सकते हैं बल्कि इससे आप अपनी पाचन शक्ति को भी दुरूस्त बना सकते हैं।

आइये हम आपको बताते हैं पेट के लिए आयुर्वेदिक सलाह – वो खास 5 आयुर्वेटिक टिप्स जो आपके पेट की सारी समस्याओं को दूर कर सकते हैं और आपके पाचन तंत्र को मजबूत बना सकते हैं।

पेट के लिए आयुर्वेदिक सलाह –

1. आराम से बैठकर खाना खाएं – पेट को तंदरूस्त रखने के लिए सबसे जरूरी है कि आप जो भी खा रहे हैं उसे एन्जॉय करें और उतना ही खाएं जितना जरूरी है। आपको मल्टीटास्किंग भोजन करने से बचना चाहिए यानि एक साथ कई चीजों का सेवन ना करें। आयुर्वेद के अनुसार आप जब भी खाना खाएं, आराम से और सही मुद्रा में बैठकर खाएं। ऐसा करने से आपको पेट की तकलीफ भी नहीं होगी और आपका पाचन भी सही रहेगा।

2. पाचन अग्नि को उत्तेजित करें – अपने पाचन को बेहतर बनाने के लिए आपको अपने पेट की पाचन अग्नि को उत्तेजित करने की जरूरत है। इसके लिए अदरक का एक टुकड़ा लें, उसमें नींबू का रस मिलाएं और थोड़ा नमक लेकर इसे पानी में मिलाएं और पी लें। इस तरह से आप गरिष्ठ भोजन को भी आसानी से पचा सकते हैं। आयुर्वेद में इस विधि को डाइजेस्टिव फायर विधि कहते हैं जो आपके पाचन को ठीक रखने में मदद करती है।

3. शीतल पेय (कोल्ड ड्रिंक) और फास्ट फूड न खायें– पेट की समस्याओं से बचने के लिए आपको कोल्ड ड्रिंक और फास्ट फूड का सेवन करने से बचना चाहिए। कोल्ड ड्रिंक और

फास्ट फूड शरीर में हानिकारक कोलेस्ट्रॉल के स्तर को बढ़ा देता है। इसके सेवन से पेट की समस्याओं के साथ ही पाचन प्रक्रिया बाधित होती है। इसलिए कोल्ड ड्रिंक के बजाय आप चाहें तो जूस का सेवन कर सकते हैं और फास्ट फूड के बजाय घर पर बना खाना ही खाएं।

4. सही दिनचर्या का पालन करें – पेट को स्वस्थ और पाचन क्रिया को दुरूस्त बनाए रखने के लिए आपको सही और नियमित दिनचर्या का पालन करना चाहिए। आयुर्वेद भी कहता है कि सुबह का नाश्ता, दोपहर और रात का खाना सही समय पर खाना चाहिए। इसके अलावा रात को खाना खाने के तुरन्त बाद नहीं सोना चाहिए। सुबह पौष्टिक आहार के साथ दिन में पेट भरकर खाना खाएं लेकिन रात के समय एकदम हल्का भोजन करें। इस तरह की दिनचर्या का पालन करके आप अपने पेट को तंदरूस्त रख सकते हैं।

5. खाने के बाद छाछ, मठ्ठा पीना ना भूलें– खाने को पचाने में छाछ, मठ्ठा बेहद फायदेमंद होती है। अगर आपने ज्यादा खाना खा लिया हो तो आप छाछ, मठ्ठा पीकर उसे आसानी से पचा सकते हैं। छाछ, मठ्ठा के सेवन से आपको पेट की समस्या तो नहीं होगी बल्कि इससे आपका पाचन तंत्र भी दुरूस्त रहेगा। लेकिन छाछ, मठ्ठा पीते वक्त इस बात का खास ख्याल रखें कि वह ज्यादा ठण्डा ना हो और इसमें बर्फ भी डालने से बचें।

''गुद रोग'' निदान एवं बचाव के उपाय

प्रो0 प्रदीप कुमार भारद्वाज, प्रोफेसर, शल्य विभाग

अर्श गुदा की व्याधि है इसे सामान्य भाषा में बवासीर भी कहते हैं। सामान्य व्यक्ति गुद मार्ग में उत्पन्न सभी लक्षणों/व्याधि को बवासीर की ही संज्ञा प्रदान करते हैं। प्रायः बहिरंग विभाग में रोगी से पूछने पर कि आपको क्या तकलीफ है तो उनका उत्तर होता है कि डॉक्टर साहब बवासीर हो गया है। जब उनसे जोर देकर पूछा जाता है तब वो गुदमार्ग में होने वाले लक्षण बताते हैं। गुद मार्ग में होने वाले कई प्रकार के रोग जैसे अर्श, भगन्दर, परिकर्तिका एवं अर्बुद प्रोलेप्स आफ रेक्टम होते हैं।

वर्तमान परिपेक्ष्य में गुद रोग प्रायः जीवन शैली जन्य व्याधियां हैं जो कि वर्तमान समय में बहुतायत में पाये जाते हैं। गुद रोग जन्य व्याधियां प्रायः खानपान एवं दैनिक दिनचर्या का व्यवस्थित न होने से होता है। आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट्ट के मत से गुद रोग प्रायः मन्दाग्नि वाले पुरूषों में विशेष रूप से उत्पन्न होते हैं।

गुद रोगों के सामान्य कारण

1. अधिक मात्रा में भोजन करना।
2. वसा का अधिक प्रयोग।
3. फाइबर युक्त भोजन, फल एवं सब्जी का कम प्रयोग।
4. जल का कम प्रयोग।
5. अधिक समय तक बैठना या खड़े रहना।
6. व्यायाम न करना आदि मुख्य कारण है।
7. शौच में अधिक समय तक प्रवाहण करना।
8. आयुर्वेद के मतानुसार उपरोक्त कारणों, मन्दाग्नि एवं अपान वायु के प्रकोप के कारण गुद रोगों की उत्पत्ति होती है।

गुद रोगों के सामान्य लक्षण

1. शौच के लिए बार–बार जाना।
2. शौच जाने पर निवृति का न होना।
3. गुद मार्ग में शौच के समय एवं शौच के बाद दर्द रहना।
4. गुद मार्ग से लाल/गहरे लाल रंग का रक्त स्राव होना।
5. गुद मार्ग से सफेद रंग के लसलसे पदार्थ का मल के साथ स्राव।
6. शौच के समय गुद मार्ग के चारों तरफ या एक तरफ मांस का आना।

7. शौच जाने की आदत में परिवर्तन होना।
8. गुद मार्ग से रक्तमिश्रित गन्दा स्राव होना।
9. गुद द्वार के पास में पिड़िका से स्राव होना।

गुद रोगों से बचाव के उपाय

1. संतुलित भोजन करना।
2. फाइबर युक्त अन्न, फल एवं सब्जियों का प्रयोग लाभकर है।
3. तरल पदार्थों का विशेषकर प्रतिदिन दो से तीन लीटर पानी का प्रयोग।
4. एक अवस्था में अधिक देर तक नहीं बैठना चाहिए।
5. शौच में अधिकतम पांच मिनट तक बैठना चाहिए।
6. शौच में प्रवाहण नहीं करना चाहिए।
7. शौच के पश्चात एवं भोजन से पहले साबुन से हाथ धोना।

भ्रान्तियाँ कुछ लोग दिन में दो से तीन बार शौच जाने को बीमारी समझने लगते है। यह देश, काल एवं परिस्थिति पर निर्भर होता है। पश्चिमी देशों में सप्ताह में दो से तीन बार ही शौच जाते हैं। यह वहां के मौसम एवं खानपान पर निर्भर करता है। हमारे देश में प्रतिदिन एक से तीन बार शौच जाना सामान्य लक्षण है। यह यहाँ के वातावरण, भोजन एवं व्यक्ति विशेष की प्रकृति पर निर्भर करता है।

संदेश यदि व्यक्ति अपने खानपान, दैनिकचर्या का ध्यान रखे तो गुद रोगों से बचा जा सकता है। गुद रोगों के लक्षण उत्पन्न होने पर चिकित्सक से परामर्श लेकर चिकित्सा करना चाहिए।

अग्निसार क्रिया (अग्निसार अन्तः धौति)

डा0 विजय द्विवेदी, एसोसिएट प्रोफेसर, शिलौंग

आज के आधुनिक भाग दौड़, आरामतलब भरी जीवन शैली में प्रायः हर व्यक्ति पाचनगत विकार से कामोवेश ग्रसित है।

अतः इस परिपेक्ष्य में आज ''यौगिक षट्कर्म'' की अद्भुत विधा की एक तकनीक जिसे ''अग्निसार क्रिया'' कहते है, प्रासंगिक है। जैसा की नाम से स्पष्ट है कि अग्नितत्व या जठराग्नि को बढ़ाने वाली क्रिया ''अग्निसार'' कहलाती है। चूंकि यह हमारे आंतरिक पाचन तंत्र की आन्तरिक अशुद्धियों को धोकर बाहर भी निकालने का कार्य करती है। इसलिए इसे ''अग्निसार अन्तः धौति'' भी कहते हैं।

अग्निसार क्रिया करने की विधि –

नाभि ग्रन्थि मेरूपृष्ठे शतवांर च कारयेत्। अग्निसारमियं धौतिर्योगिनां योग सिद्धदा।

यह बैठकर या खड़े होकर दोनों तरह से कर सकते हैं। बैठकर करने के लिए सिद्धासन, पद्मासन या वज्रासन में से किसी एक आसन में खाली पेट प्राः कमर, गर्दन को सीधी करके दरी पर बैठे। घुटने, जमीन से लगा कर रखे। उसके पश्चात आंखों को खुले या बन्द रखते हुए मुंह से श्वास को फेफड़ों एवं पेट में भरे, उसके कुछ समय बाद होंठ को गोल करते हुए श्वास को बाहर निकाल दे। ताकि फेफड़े की पूरी वायु बाहर आ जाय, ठीक इसी समय बाह्य युम्भक की स्थिति में पेट की मांसपेशियों को मेरूदण्ड से लगाये एवं कम से कम 15 आवृत्ति तक यह क्रिया करें और आकुंचन प्राकुंचन करते रहे, इस प्रकार करे कि उदर को बाहर की ओर फेंके एवं अंदर की ओर खीचें। यह क्रिया जठराग्नि को बढ़ाती है, उदर की समस्त विकारों का समन करती है। साथ ही परानुकम्पी तंत्र को उत्तेजित करती है।

सावधानियाँ – गर्भावस्था, हर्निया, उच्चरक्तचाप, हृदयरोग एवं अल्सर के रोगी न करें।
खाली पेट एवं गुरू के सानिध्य में इसका अभ्यास करें।
किसी आपरेशन की स्थिति में इसका अभ्यास वर्जित है।

लाभ (शारीरिक) – समस्त उदरगत रोग, यकृत विकार तिल्ली विकार, अम्लपित्त दूर होता है।

मानसिक – यह अभ्यास परानुकम्पी तंत्रिका को उत्तेजित करता है एवं अन्तर्मुखी व्यक्तित्व को बहिर्मुखी बनाता है। साथ में शरीर में साम्यता लाता है।
आध्यात्मिक – इसके अभ्यास से मणिपुरचक्र जागृत होता है। जो कुण्डलिनी जागरण में सहायक होता है। एक साथ माणिपुर, स्वाधिष्ठान, मूलाधार तीनों चक्रो पर प्रभाव पड़ने से प्राणों की जागृत स्वतः होती है एवं कुण्डलिनी जागरण की दिशा की ओर उन्मुख होते हैं।

अग्नि एवं पंचकर्म

डॉ0 अजय गुप्ता, कायचिकित्सा, राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी

आयुर्वेद के अनुसार मनुष्य की आयु, वर्ण, बल, स्वास्थ्य, उत्साह, शरीर की वृद्धि, कान्ति, ओज, तेज, अग्नियां और प्राण ये सभी जठराग्नि पर ही निर्भर रहते हैं। यदि जठराग्नि शान्त हो जाये तो मनुष्य की मृत्यु हो जाती है और जठराग्नि में विकृति आ जाय तो मनुष्य रोगी हो जाता है। इसलिए आचार्य चरक ने अग्नि को आयु, वर्ण, बल आदि का मूल कहा है। अग्नि प्रकार – शरीर में स्थित अग्नि के 13 प्रकार हैं।

1. पाचकाग्नि या जठराग्नि 2 सात धातवाग्नि 3. पाँच भूताग्नि

अग्नि के कार्य –

शरीर में प्रतिक्षण, शारीरिक धातुओं का क्षय होता रहता है। उस क्षय की पूर्ति के लिये आहार की आवश्यकता होती है। जब आहार द्रव्य पाचकाग्नि द्वारा पचित होता है, तब रस धातु का निर्माण होता है और इसके बाद धातुओं की सात धात्वाग्नियों द्वारा पाचन होकर पोषण रूप बनता है, जिनके द्वारा शरीर का पोषण आयु, बल, वर्ण, कान्ति आदि की स्थिति बनी रहती है। किन्तु जब पाचकाग्नि में ही विकृति आ जाती है तो विकृत रस के निर्माण होने पर सभी धातुएं विकृत हो जाती है।

जठराग्नि का महत्व –

व्यक्ति द्वारा खाये हुये आहार को प्राण वायु कोष्ठ में ले जाती है। आमाशय में जब अन्न प्रविष्ट हो जाता है तो आमाशयस्थित द्रव द्वारा उसका संघात छिन्न–भिन्न हो जाता है। तथा क्लेदक कफ में वर्तमान स्नेहांश से वह आहार कोमल हो जाता है। फिर समान वायु से प्रेरित उदर की अग्नि प्रबल होकर उचित समय पर सम मात्रा में खाये गये उस अन्न को उचित रूप से पकाती है। जिस प्रकार एक पात्र में चूल्हे के उपर रखा हुआ जल और चावल को पकाकर वाह्याग्नि भात को पकाती है। उसी प्रकार आमाशय में रहने वाले आहार को आमाशय के अधः प्रदेश में रहने वाली पाचकाग्नि उचित रूप में पकाकार रस एवं मल को उत्पन्न करती है।

शरीर में विकृत अग्नि ही समस्त रोगों को उत्पन्न करती है। अग्नि की मुख्य 4 अवस्थाये बताई गई है जिनमें से 3– मन्दाग्नि, अत्याग्नि (तीक्ष्णाग्नि) और विषमाग्नि सदैव रोग उत्पन्न करती है। केवल समाग्नि ही शरीर को पोषित करती है। पित्त के बढ़ने के कारण अत्याग्नि, वात के कारण विषमाग्नि और कफ के कारण मन्दाग्नि होती है। इनमें से भी मन्दाग्नि ही मुख्य रूप से पाचन सम्बन्धी रोगों का मूल है। मन्दाग्नि के कारण अतिसार, ग्रहणी, अम्लपित्त, अर्श आदि रोग उत्पन्न होते है। इन सभी रोगों की चिकित्सा मुख्य रूप से संशमन और संशोधन से की जाती है।

पंचकर्म –

अग्नि संबंधी रोगों में पंचकर्म का विशेष महत्व है। औषधि देने के बाद भी यदि कोई प्रभाव नही मिलता है तो फिर रोगी की संशोधन चिकित्सा कराई जाती है और संशोधन के प्रधान चिकित्सा पंचकर्म है। पंचकर्म आयुर्वेद की उत्कृष्ट चिकित्सा विधि है। इस विधि से शरीर में होने वाले रोगों और रोग के कारणों को दूर करने के लिये और तीनों दोषों वात, पित्त, कफ के विकृत रूप को समरूप में पुनः स्थापित करने के लिये विभिन्न प्रकार की प्रकियायें प्रयोग में

लाई जाती हैं। लेकिन इन कई प्रक्रियायों में पांच कर्म मुख्य हैं, इसीलिय ''पंचकर्म'' कहते हैं। ये पांच कर्मों की प्रक्रियायें इस प्रकार हैं –

1. वमन, 2. विरेचन, 3. बस्ति–अनुवासनबस्ति, 4. आस्थापन, 5. नस्य। इन पांच प्रक्रियाओं को मुख्य अथवा प्रधान कर्म कहते है।। कुछ आचार्यों ने बस्ति को एक ही चिकित्सा मानकर रक्तमोक्षण को भी पंचकर्म का एक भाग मान लिया है।

1. वमन – पंचकर्म का पहला कर्म वमन है। कफ प्रधान रोगों को वमन करने वाली औषधियां देकर वमन करवाकर ठीक किया जाता है।
2. विरेचन – पित्त दोष विरेचन औषधियों के द्वारा विरेचन करवा कर ठीक किया जाता है।
3. बस्ति – वात दोष को बाहर करने के लिये ये विधि अपनाई जाती है। इसमें गुदा के द्वारा बस्तियंत्र से औषधि को अन्दर प्रवेश कराकर बाहर निकाला जाता है।
4. रक्तमोक्षण – इसमें रक्त खराब हो जाने से होने वाले रोगों से मुक्ति के लिए रक्त को बाहर निकाला जाता है। सिराओं को काटकर या जलौका चिपका कर अशुद्ध रक्त बाहर निकालने की कोशिश की जाती हे।
5. नस्य – इस चिकित्सा में नाक के छिद्रों से औषधि अंदर डालकर कंठ तथा सिर के दोषों को दूर किया जाता है।

उपर्युक्त विधियों में से वमन विरेचन और बस्ति ही मुख्य रूप से अग्नि विकार जन्य रोगों में की जाती है। पंचकर्म से साध्य कुछ रोगों का वर्णन इस प्रकार है –

1. अम्लपित्त – सबसे ज्यादा इस रोग से पीड़ित व्यक्ति मिलते हैं। इसे एसिड पेप्टीक डिजीज भी कहते हैं। इसमें मुख्य रूप से वमन कर्म करते हैं। वमन से दूषित पित्त बाहर निकल जाता है जिससे रोगी को शान्ति मिल जाती है।
2. ग्रहणी – इसे सामान्य भाषा में आइ.बी.डी. कहा जाता है। इस रोग में दोष के अनुसार चिकित्सा की जाती है। वातज ग्रहणी में बस्ति, पित्तज में विरेचन और कफज में वमन करते है।
3. अतिसार – इसे सामान्य भाषा में डायरिया कहते हैं। इसमें मुख्य रूप से पिच्छा बस्ति का प्रयोग करते हैं।
4. विसूचिका – यह भी अतिसार का एक भेद है जिसमें मुख्य रूप से बस्ति का प्रयोग करते हैं।
5. प्रवाहिका – इस रोग में रोगी को बार बार मल की प्रवृति होती है। इसमें भी पंचकर्म द्वारा रोग का समुचित उपचार किया जाता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि अग्नि विकार जन्य रोगों में संशमन चिकित्सा के साथ–साथ यदि संशोधन चिकित्सा का भी प्रयोग किया जाए तो निश्चित ही रोग का समूल नाश होकर स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

अग्निवर्धक योगाभ्यास

मणिकान्त तिवारी, शोध छात्र, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिकस्तरों पर सामंजस्य स्थापित करने में योग की विभिन्न क्रियाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शरीरस्थ कफ–पित्त–वायु सम्बन्धी रोगों के शमन, जठराग्निवर्धन एवं सुषुम्ना–मार्ग के उद्घाटन में यौगिक दस मुद्राएं, षट्कर्म, आसन, प्राणायाम का प्रयोग निश्चित ही विशेषलाभकारी है। सामान्य रूप से प्रायः सभी यौगिक क्रियाएं जठराग्नि उद्दीपन में सहयोगी होती हैं लेकिन योग शास्त्रों में योगाग्नि वर्धनार्थ कुछ विशेष क्रियाओं का वर्णन प्राप्त होता है, जिनमें से कुछ क्रियाओं का दार्शनिक एवं संयुक्त प्रयोगात्मक स्वरूप प्रस्तुत है –

हठक्रियाओं का शिरोमौर्य नौलि क्रिया को कहा गया है। नौलिक्रिया के सहयोगी क्रिया के रूप में भस्त्रिका, अग्निसार, मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध एवं जालन्धरबन्ध का वर्णन अत्यन्त अपेक्षित है। इन सभी क्रियाओं के अभ्यास से प्राणों के स्तर पर विशेष क्रियाशीलता के फलस्वरूप सही रीति से किया गया अल्पकालिक प्रयास भी उदरसम्बन्धी अजीर्णादि विकारों के नाश में प्रभावशाली है। इन सभी क्रियाओं में एक पक्ष सामान्य है, वह है – प्राण और अपान को मिलाने का प्रयत्न।

अग्निवर्धन का मूलार्थ है – प्राण–अपान का संयोग या समानप्राण का भेदन।

नौलिक्रिया के मूल में निहित मूलबन्ध एवं प्राणापान संयोजन ही वह मुख्य कड़ी है जो सम्पूर्ण शरीर में एक प्राणिक क्रान्ति का हेतु बनती है। अग्नि का विवर्धन ही शरीरस्थ सारतत्व वीर्य या रज को ओजरूपात्मक उर्ध्वमुखी करने में मुख्य कारक बनता है। सम्पूर्ण यौगिक साधनाओं में अग्नि एवं सोम का चक्रिक क्रम ही तो वह पक्ष है जिसके अभाव में सम्पूर्ण साधनाऐं अधूरी हैं। अस्तु, उपर्युक्त क्रियाओं का सामान्य प्रायोगिक पक्ष प्रस्तुत है –

प्रातः शौचादि नित्यक्रिया निवृत्ति के बाद एकान्त शान्त स्थल पर गुरू स्मरण स्तवनान्तर ये अभ्यास प्रारम्भ करें। सर्वप्रथम प्रारम्भ में लगभग 2–3 मिनट लगातार भस्त्रिका का अभ्यास करें। इस क्रिया में लोहकार की भस्त्र के समान शीघ्रतापूर्वक रेचक पूरक किया जाता है। तनिक विश्राम करें। एतदनन्तर अग्निसार का अभ्यास करें। इस क्रिया के लिए – सम्पूर्ण श्वास का रेचन करें, श्वासों को बाहर ही रोक दें और पेट को शीघ्रतापूर्वक आगे–पीछे करें। इस क्रिया का अभ्यास इतना बढ़ाना चाहिए कि एक श्वांस में 100 बार तक पेट को शीघ्रतापूर्वक आगे–पीछे किया जा सके। ध्यान रहे कि अग्निसार की पूर्णता में हर बार श्वांस का पूर्ण पूरक कर अन्तर्कुम्भक कर लें तथा इसके साथ ही मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध और जालन्धरबन्ध इत्यात्मक त्रिबंद्ध का अभ्यास अवश्य करें। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को सामर्थ्यानुसार कम से कम 10 बार दोहराएं। त्रिबंद्धवस्थित उड्डयान से भिन्न सामान्य उड्डयानबन्ध का एवं नौलि का प्रयोग स्वरूप प्रस्तुत हैं –

उड्डयानबन्ध – श्वांसों का पूर्ण रेचन कर बहिर्कुम्भक करें एवं उदर को पूर्ण अन्दर और उपर की ओर खींचे। आंखे भृकुटी में लगाएं। जितना सहज हो सके रूकें फिर धीरे–धीरे पूरक कर अन्तर्कुम्भक कर लें। फिर सामान्य हो जाएं। इस क्रिया में मूलबन्ध स्वतः लग जायेगा। जालन्धरबन्ध लगा कर किया गया अभ्यास अधिक श्रेष्ठ है।

नौलिक्रिया – पूर्ववत् ही बहिर्कुम्भक कर पेट को अन्दर करें। दोनों जंघाओं पर कोहनियों को सीधा रखते हुए कंधों से पूर्णदाब दें और उदर को बाहर की ओर निकालें। सतत् ऐसा अभ्यास करने से दो नलों का समुदाय बाहर आ जायेगा। फिर इसे दाएं बाएं करने के लिए नल को जिस ओर घूमाना हो उस ओर की जंघा पर अधिक दाब दें और दूसरी जंघा से दाब हटाएं। इसी क्रम को तीव्रता देने पर यह नल घूमने लगेगा। यह नौलिक्रिया का प्रारम्भिक स्तर है।

लाभ – यह सम्पूर्ण क्रिया समुदाय अग्निवर्धक, कफ–पित्त–वायु सम्बन्धी विकार नाशक और रोमांचदायक है। इसमें अभ्यास ही प्रमाण है।

सावधानियां –

1. कुम्भक काल को शनैः शनैः ही बढ़ाएं।
2. सहज रहें एवं एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया के मध्य 40–50 सेकेंड का अन्तराल अवश्य रखें।
3. आंखों को बन्द रहना, प्राणों में सहजता, धैर्य और मणिपुरचक्र पर ध्यान अपेक्षित है।
4. हृदय, उच्च रक्तचाप और उदर की शल्यचकित्सा वाले व्यक्ति गुरू के विशेष मार्गदर्शन में ही इनका अभ्यास करें।

नोट – योग्य योगगुरू से सीखकर ही इनका अभ्यास करें।